कर सकता है और न श्रीकृष्ण का पूर्ण ज्ञान ही दे सकता है। जो श्रीकृष्ण के तत्त्व को न जानते हुए उनके चरित्र पर आक्षेप करता है, वह मूढ़ है। अतः ऐसे भाष्यों को बड़ी सावधानी से त्याग देना चाहिए। जो पुरुष जानता है कि श्रीकृष्ण शुद्ध दिव्य पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् हैं, उसके लिए ये अध्याय परम कल्याणकारी हैं।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।२।।

राजविद्या=सब विद्याओं का राजा; **राजगुह्यम्**=सब गोपनीय ज्ञान का राजा; **पवित्रम्**=सबसे अधिक पावन; **इदम्**=यह; **उत्तमम्**=दिव्य; **प्रत्यक्ष अवगमम्**=जिसका फल प्रत्यक्ष अनुभव में आता है; **धर्म्यम्**=धर्ममय; **सुसुखम्**=अति सुगम है; **कर्तुम्**=साधन करने में; **अव्ययम्**=अविनाशी है।

अनुवाद

यह ज्ञान सब विद्याओं का राजा, सम्पूर्ण गोपनीय रहस्यों का राजा, परम शुद्ध और स्वरूप-साक्षात्कार कराने वाला परम धर्म है। यह अविनाशी है और साधन करने में बड़ा सुगम है।।२।।

तात्पर्य

श्रीमद्भगवद्गीता के इस अध्याय को **राजविद्या** कहा गया है क्योंकि यह सभी पूर्ववर्णित मतों एवं दर्शनों का सार है। गौतम, कणाद, कपिल, याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, वैश्वानर तथा वेदान्तसूत्र के रचयिता व्यासदेव—ये सात प्रधान दर्शनवेत्ता हुए हैं। इस प्रकार दर्शन अथवा दिव्य ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त संवृद्ध है। श्रीभगवान् कहते हैं कि यह नौवाँ अध्याय इन सब विद्याओं का राजा तथा वेदों और विभिन्न दर्शनों से अध्ययन से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण ज्ञान का सार है। यह दिव्यज्ञान परम गोपनीय है, क्योंकि इससे आत्मा और देह में भेद जाना जाता है। सम्पूर्ण गोपनीय ज्ञान की स्वामिनी इस राजविद्या का फल भक्तियोग है।

सामान्यतः लोगों को इस राजविद्या की शिक्षा नहीं दी जाती; उनकी शिक्षा बाह्य ज्ञान तक ही सीमित रहती है। जहाँ तक साधारण शिक्षा का सम्बन्ध है, राजनीति, समाज-शास्त्र, भौतिकी, रसायन-शास्त्र, गणित, खगोल, यन्त्र-शास्त्र, आदि कितने ही क्षेत्रों में बहुत से मनुष्य व्यस्त हैं। विश्व में ज्ञान के कितने ही विभाग और विश्वविद्यालय विद्यमान हैं। दुर्भाग्यवश ऐसा कोई विश्वविद्यालय अथवा विद्या-संस्थान नहीं है जो आत्मतत्त्व की शिक्षा देता हो। देह में आत्मा का महत्त्व सबसे अधिक है; यहाँ तक कि उसके बिना देह बिल्कुल निरर्थक हो जाती है। फिर भी लोग इस प्राण के आधार (आत्मा) की उपेक्षा कर केवल शारीरिक आवश्यकताओं को महत्त्व दे रहे हैं।

गीता में, विशेष रूप से द्वितीय अध्याय से आत्मतत्त्व की महिमा को गौरवान्वित किया गया है। श्रीभगवान् ने अपने उपदेश को प्रारम्भ करते हुए इस देह को नश्वर और आत्मा को नित्य बताया है। देह से भिन्न आत्मा निर्विकार, अविनाशी,